* ॐ *

प्राणायाम प्रयोग विधि

परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी विशुद्धानन्द
गद्दी के महन्त स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती
ने संशोधन कर प्रकाशित किया

सन् १९५३ ई०

[प्रथमबार १०००]
वसंत पंचमी
सं० २००९
[मूल्य =)
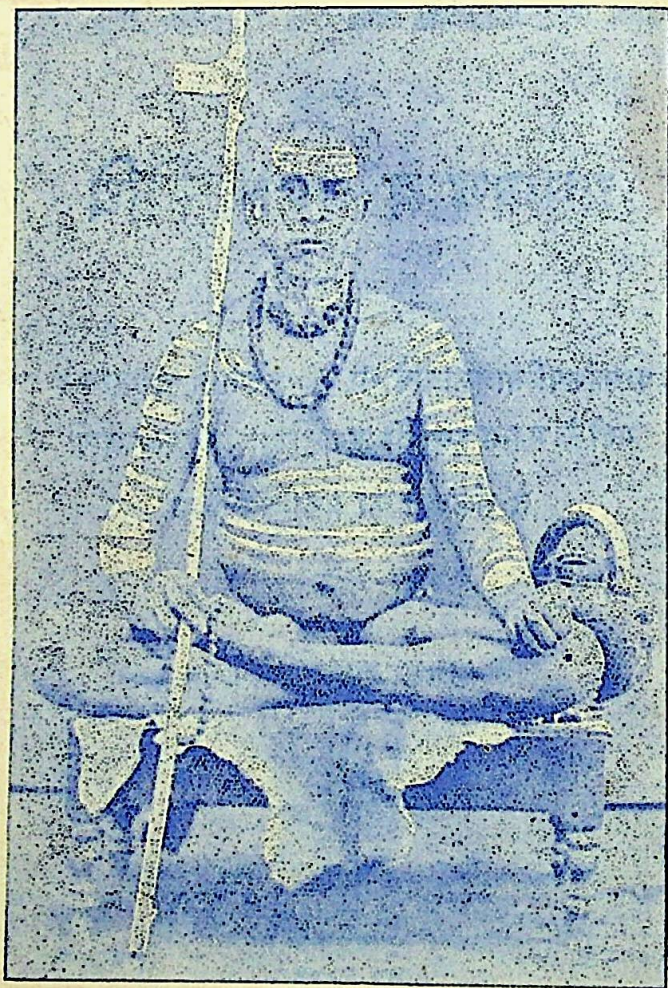
परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती
गंगामहल मठ, मुंशीघाट, काशी

प्राणायाम प्रयोग विधि

यह मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। न मालूम कि कितने पुण्य के प्रभाव से कितने योनियों को भ्रमण करते हुए इस मनुष्य शरीर को प्राप्त किया जाता है। ऐसे दुर्लभ शरीर को पा यदि मनुष्य विषय-भोग में लिप्त रहे और दीर्घ-जीवन प्राप्त करने के लिये कोई यत्न नहीं करे तो इससे बढ़कर और अज्ञानता क्या हो सकता है। वह इन्द्र-सा वैभव किस काम का है जिसके भोगने में हम असमर्थ हों। हम नाना प्रकार के अपकर्म करके सुख भोगने के लिये धन इकट्ठा करते हैं परन्तु हम उसका उपयोग करने नहीं पाते, इसका कारण प्रत्यक्ष है कि हमने दीर्घ-जीवन प्राप्त के लिये कुछ यत्न नहीं किया और पाप की गठरी अपने सिर पर लाद लिया। मधुमक्खी अपने छत्ते में मधु इकट्ठा करती है किन्तु उसका उपभोग दूसरे के लिये होता है। वैसे ही उस एकत्रित धन का फल है, अस्तु मनुष्यमात्र को दीर्घ-जीवन प्राप्त का उपाय अवश्य करना चाहिए।

यह मनुष्य शरीर एक प्रकार का क्षेत्र है। इसमें मनुष्य अच्छे और बुरे कर्मों को उच्च से उच्च स्थान और बुरे से बुरे

स्थान को पाता है। यदि विवेक विचार से ज्ञान मार्ग का अवलम्बन किया जाय तो साधन द्वारा ईश्वर का प्राप्त होना कुछ कठिन नहीं है, परन्तु सभी कर्मों के करने के लिये दीर्घ-जीवन की आवश्यकता है। यदि जीवन दीर्घ न हो तो अल्प समय में ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? मनुष्य को ऐसा यत्न करना उचित है जिसमें जीवन दीर्घ और आनन्दपूर्ण हो। जिस जीवन में आनन्द नहीं वह जीवन वृथा है।

संसार के सभी जीवधारियों का जीवन श्वास-प्रश्वास के आवागमन पर है। बाहर के अपान वायु को भीतर ले जाना श्वास कहाता है और भीतर के प्राणवायु को बाहर निकाल कर फेंकना प्रश्वास कहाता है। जिस समय श्वास-प्रश्वास का आवागमन रुक जाता है उसी समय जीवन की समाप्ति समझी जाती है। गोरक्ष पद्धति में लिखा है कि—

> यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवं न मुञ्चति।
> मरणं तस्य निष्क्रान्ति स्ततो वायुं निरोधयेत्॥

अर्थात्—जब तक शरीर में वायु स्थिर रहता है तब तक जीव शरीर को नहीं छोड़ता। जब प्राणवायु शरीर से निकल जाता है तो उसी अवस्था को मरण कहते हैं। जीवन-मरण प्राण वायु के आधीन है, इसलिये प्राणवायु का रोधन अवश्य विधि से करना चाहिए।

मनुष्य को दीर्घ-जीवन प्राप्त करने के लिये प्राणायाम करने की आवश्यकता है। प्राणवायु को वमनवत् बलपूर्वक बाहर निकालने तथा पुनः अपान नामक वायु को भीतर ले जाने से चित्त की एकाग्रता होती है, इसी को प्राणायाम कहते हैं। अर्थात् आसन स्थिर होने के पश्चात् श्वास और प्रश्वास दोनों के गति के अवरोध को "प्राणायाम" कहते हैं। योगविद्या का प्राणायाम

प्रधान विषय है। संयम युक्त प्राणायाम प्रयोग करने से सम्पूर्ण मुख्य क्रियायें सिद्ध हो जाती हैं और साक्षात् परमात्मा के साथ योग प्राप्त होकर जीव अमृत-सुख और आनन्द भोगता है। प्राणायाम अन्तरंग साधनों की प्रथम श्रेणी है। प्राणायाम प्रयोग से प्राण स्थिर होकर चित्त की चंचलता दूर होती है और वासना रुककर शान्ति प्राप्त होती है। इस शान्ति से मुक्ति और मुक्ति से परमानन्द प्राप्त होता है। यह हमारे दुर्भाग्य की बात है कि, जिस विद्या को महर्षियों ने संसार के लाभ के लिये प्रचार कर गये थे, आज उन्हीं की सन्तान हो हम उसे अनावश्यक समझते हैं। हमलोगों का कर्म इतना बिगड़ गया है कि अविद्या के अन्धकार में पड़कर ऐसे ऐसे घर रत्नों की खबर ही नहीं रखते; यदि खबर भी हो तो उसे व्यर्थ कहकर टाल देते हैं। बहुतेरे भारतीय कहते हुए पाये जाते हैं कि योग क्रिया बहुत कठिन है, यह घर में रहकर हो ही नहीं सकती, इसके लिये जंगल ही उपयुक्त स्थान है। वह यह नहीं सोचते कि मैंने भोग-विलास की सामग्रियाँ जो कुछ इकट्ठी कर रक्खे हैं, क्या बिना दीर्घ-जीवी हुए इसका आनन्द प्राप्त हो सकता है? आलस्य के वशीभूत ऐसे हो गये हैं कि सन्ध्या, प्राणायाम जो हमारे धर्म का प्रधान अंग है इसे निरर्थक समझते हैं। मिथिलेश राजर्षि जनक कैसे ब्रह्मविद्या के ज्ञाता हो गए, जिनके द्वार पर योगिवर शुकदेव अपनी शंका समाधान के लिए सात दिन तक खड़े रहे। आज हम उन्हीं अमरत्व को प्राप्त करने वाले ऋषियों के सन्तान होकर आलस्यवश ऐसी उपयोगी वस्तु को निरर्थक समझते हैं। क्या योगिराज जनक राज्यकार्य नहीं करते थे? कब वह जंगल में जाकर योग-साधन करने गये थे? यह आवश्यक है कि प्राणायाम योगसाधन के लिये एकान्त स्थान चाहिए। सो हम घर में रहकर इसका

प्रबन्ध भलीभाँति कर सकते हैं। यह कुछ आवश्यक नहीं कि जंगल में जायँ। यह हमलोगों के मन की निर्बलता है कि ऐसे उपयोगी प्रयोग जिससे जीवन दीर्घ हो, दूर रहें।

प्राणायाम प्रयोग से मन की चञ्चलता दूर होती है और आत्मा को बल प्राप्त होता है। मन की चञ्चलता झिलमिलाती हुई प्रकाश के समान है। यह विषय स्वयम् सिद्ध है कि, प्रकाश के झिलमिलाहट के कारण पुस्तक के विषय भलीभाँति पढ़े नहीं जा सकते, उसी भाँति मन चञ्चल रहने पर आत्मा का बोध नहीं हो सकता। मन स्थिर होने ही से प्राणी जान सकता है कि हमारी चाही हुई वस्तु क्या और कितनी दूर अवस्थित है। जीवन-मरण प्राण-वायु के अधीन है, इसी हेतु ब्रह्मा एवं सनकादिक सिद्ध, दत्तात्रेयादि मुनि प्राणायाम के साधन में तत्पर हैं। अन्य योगियों को भी इस प्रयोग से काल का भय नहीं होता इसलिये प्राणायाम साधन करना योग्य है।

जीव सद्चित्त आनन्द स्वरूप है। जब इसे अज्ञानता घेर लेता है तब यह अपने वास्तविकरूप को भूल जाता है। इस अज्ञानता के कारण ही इसे दुःखरूपी अन्धकार में पड़ना होता है। उस समय उसे अपनी अवस्था को प्राप्त करने के लिये विकलता होती है। यही कारण है कि वह सांसारिक भोग की वस्तु में अपनी असली आनन्दरूप को ढूँढ़ने के लिये भटकता फिरता है। उसे प्रत्येक पदार्थ में भ्रमण करते हुए निराशा प्राप्त होती है और अन्त में नरक में पतित होना पड़ता है। इस दुःख से बचने के लिये मुनियों ने अनेकानेक मार्ग बतलाये हैं; उसमें प्राणायाम प्रयोग-विधि अत्यन्त सुगम और आपदाओं से रहित है। जैसे मनुष्य को किसी मार्ग से जाने के लिये पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है उसी भाँति इस सुगम (मार्ग) रीति के साधन

के लिये भी अच्छे गुरु की आवश्यकता है, अस्तु जो बुद्धिमान हैं वह बिना सद्‌गुरु को प्राप्त किए किसी मार्ग का अवलम्बन नहीं करते। सभी महात्माओं ने इस मार्ग का अवलम्बन किया है और आत्मस्वरूप को सुगमता से प्राप्त कर लिया है।

योग और योग के आठ अंग

महर्षि पतञ्जलि योगशास्त्र को आरम्भ करते हुए लिखते हैं कि, "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्त के वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। अर्थात् चित्त के वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाकर शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष प्राप्त करने को योग कहते हैं। परमेश्वर और उसकी आज्ञाओं से विरुद्ध बुराइयों में फँसकर उस परमात्मा से दूर हो जाना वियोग कहाता है। मनुष्य जब जब ईश्वर की उपासना करना चाहे तब तब इच्छा के अनुसार एकान्त में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करे, तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तरयामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भलीभाँति से उसमें लगा दें।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योग के ये आठ अंग हैं। इनमें से प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि तो योग के साक्षात् साधक हैं।

अतएव प्राणायामादि अन्तरंग साधन कहाते हैं। यम, नियम, आसन ये तीन परम्परा स्वयं से योग में सहायता देते हैं। यथा यम और नियम से चित्त में निर्मलता तथा योग में रुचि बढ़ती है और आसन के पश्चात् प्राणायाम स्थिर होता है। अतः यमादि योग के परम्परा से उपकारक है किन्तु साक्षात् समाधि के साधन नहीं है। इस कारण यमादि योग के बहिरंग साधन कहाते हैं। इन आठों अंगों का सिद्धान्तरूप संयम फल है।

यम पाँच प्रकार के हैं

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ये पाँच यम कहाते हैं। ये यम उपासना योग के प्रथम अंग कहाते हैं। क्रमानुसार नीचे पाँचों के लक्षण लिखे जाते हैं।

अहिंसा—सब प्रकार के सब काल में सब प्राणियों के साथ वैर भाव छोड़कर प्रेम प्रीति से बर्तना। अर्थात् किसी काल में किसी प्रकार से किसी प्राणी के साथ शत्रुता का-सा काम न करना और किसी की बुराई भी कभी न करना "अहिंसा" कहाता है। अहिंसा शेष यमों का मूल है, क्योंकि अहिंसा के सिद्ध करने के लिये ही सत्य आदि सिद्ध किये जाते हैं। अहिंसा में सब प्रकार की हिंसा निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्म प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला योगी जैसे बहुत से व्रतादि नियमों को धारण करता जाता है, तैसे ही प्रमाद से किए हुए हिंसा के कारण रूप पापों से निवृत्त होकर निर्मूल रूप वाली अहिंसा को धारण करता है।

सत्य—जैसा देखा, अनुमान किया या सुना हो, अपने मन और वाणी से वैसा ही प्रकाशित करना। और जिस किसी को

उपदेश करना हो तो निष्कपट निर्भ्रान्त ऐसे शब्दों में करना, जिससे उसका अपने हित और अहित का यथार्थ बोध हो जाय और यह वाक्य निरर्थक न हो। सब प्राणियों के उपकार के लिये कहा गया हो। न कि उसके विनाश के लिये! और जो वाक्य कहना हो उसकी परीक्षा सावधान मन से करके यथार्थ कहना "सत्य" कहाता है।

अस्तेय—सत्य के विरुद्ध, निषिद्ध या अन्याय के रीति से किसी पदार्थ को ग्रहण करना, प्रत्युत उसकी इच्छा भी न करना "अस्तेय" कहाता है।

ब्रह्मचर्य—गुप्तेन्द्रिय का संयम नाम निरोध करके वीर्य की रक्षा करना। विद्या पढ़ने के लिये बाल्यावस्था से लेकर सर्वदा जितेन्द्रिय रहना और किसी स्त्री को पाप बुद्धि से न देखना "ब्रह्मचर्य" कहाता है।

अपरिग्रह—विषय और अभिमानादि दोषों से रहित होना अर्थात् भोग साधन की सामग्रीरूप भोग्यपदार्थों तथा विषयों का संग्रह करना, फिर उनकी रक्षा करना, पश्चात् उनके नाश में सर्वत्र हिंसा रूप दोष देखकर विषयों या अभिमानादि दोषों का त्यागना "अपरिग्रह" कहाता है।

यम के पाँच नियम भी होते हैं जो क्रमानुसार वर्णन किया जायगा।

यम के पाँच प्रकार के नियम

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और प्रणिधान ये यम के पाँच नियम हैं। शौच पवित्रता को कहते हैं। यह भी 'बाह्य' और 'आभ्यन्तर' दो प्रकार का होता है। बाह्य शौच, बाहर की पवि-

ज्ञता को कहते हैं। जो मृत्तिका जलादि शरीर स्थान मार्ग, वस्त्र, खान-पान आदि को शुद्ध रखने से होता है। आभ्यन्तरिक शौच भीतर के शुद्धि को कहते हैं, जो धर्माचरण, सत्य भाषण, विद्याभ्यास, विद्वानों का संग तथा मैत्री आदि से अन्तःकरण के मलों को दूर करने आदि शुभ गुण कर्मस्वभाव के आचरण से होता है।

सन्तोष—सदा धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरुषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर न होना "सन्तोष" कहाता है। किन्तु आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है। अर्थात् निज पुरुषार्थ और परिश्रम करने से जो कुछ थोड़ा या बहुत पदार्थ अपनी उदर पूर्ति या कुटुम्ब पालनादि निमित्त प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट रहना। निर्वाह योग्यपदार्थ के प्राप्त हो जाने पर अधिक तृष्णा न करना और-और अप्राप्ति में शोक भी न करना यही आचरण "सन्तोष" का है।

तप—जैसे सुवर्ण को अग्नि में तपा कर निर्मल कर देते हैं वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण रूप तप से निर्मल कर देना। अर्थात् सुख-दुःख, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मानापमानादि द्वन्द्वों का सहन करना तथा कृच्छ्चन्द्रायन, सान्तपन आदि व्रतों का करना या स्थिर निश्चल आसन से एक नियत स्थान में ध्यानावस्थित मौनाकार वृत्ति से नितप्रति नियमपूर्वक नियत समय तक दोनों सन्ध्या वेलाओं में योगाभ्यास करना "तप" कहाता है।

स्वाध्याय—मोक्ष विद्या-विधायक वेदादि सत् शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, ओंकार के अर्थ विचार से ईश्वर का निश्चय करना और प्रणव का जप करना "स्वाध्याय" कहाता है।

प्रणिधान—सब सामर्थ्य, सब गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेमभाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिये समर्पण करना "प्रणिधान" कहाता है। अर्थात् आशा रहित निष्काम को करना और दुःखदायी सकाम कर्म को त्यागना प्रणिधान है। जो सकाम कर्म में मन लगाता है वह दुःखदायी होता है और निष्काम कर्म परम सुखकर है।

यम और नियम के साधन की सरल विधि यह है कि सदैव सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का निरन्तर रात-दिन के क्षण-क्षण में ध्यान रक्खे। जब कभी रजोगुण या तमोगुण कर्मों के करने का संकल्प मन में उठे, तभी उनको जान ले तथा वहीं का वहीं रोक दें। इस प्रकार अपने मन को ऐसे संकल्प-विकल्पों से हटाकर सत्वगुण में स्थिर कर दे। ऐसा अभ्यास करने से समाधि प्रयन्त सिद्ध हो जाते हैं। आत्मा तभी पवित्र योग का पात्र होता है जब यम और नियम का साधन करता है। जिससे यम नियम का साधन नहीं होता उसका योग के लिये परिश्रम करना निष्फल है। योग साधन में आसन की भी आवश्यकता है। यह योग का तृतीय अंग है और चौरासी लक्ष योनि के अनुसार उतने ही आसन हैं, जिसका साधन मनुष्य से हो नहीं सकता; अतएव सिद्धासन, भद्रासन, मुक्तासन, योगासन, कमलासन ये पाँच मुख्य आसन हैं। इनमें से साधक अपनी इच्छानुसार आसन को चुन ले। रोगादि समन करने वाली क्रिया का नाम मुद्रा है इसलिये मुद्राओं का सेवन करना अत्यावश्यक है। बहुत देर तक आसनस्थ रहने से रक्त और वायु की क्रियायें अवरुद्ध हो जाती हैं और पुनः चैतन्यता प्राप्त नहीं करने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है। अस्तु स्वस्थ रहने के लिये मुद्राओं का करना परमोचित है।

यद्यपि योग-शास्त्रों में मुद्राएँ पच्चीस प्रकार की वर्णित हैं किन्तु उनमें से महामुद्रा, योनिमुद्रा, खेचरीमुद्रा और नाभिमुद्रा सबको करने योग्य है। जिस प्रकार स्वर्ण तपाकर शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार साधक अपने शरीर को मुद्रा द्वारा शुद्ध (निरोग) करके योगाभ्यास में तत्पर हो।

उपरोक्त वर्णित नियमों के उपरान्त प्राणायाम का विषय आता है। प्राणायाम चार प्रकार का होता है ; (१) बाह्य विषय, (२) आभ्यान्तर विषय, (३) स्तम्भवृत्ति और (४) बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी। इन चारों का अनुष्ठान इसलिये है कि चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे। ये चारो प्राणायाम किसी एक देश में संख्या द्वारा काल का नियम करने के कारण दीर्घ और सूक्ष्म दो-दो प्रकार के हैं, तथा देश-काल और संख्या इन तीन उपलक्षणों से त्रिविध भी कहे जाते हैं।

प्रथम प्राणायाम—इसे धारणा की विधि भी कहते हैं। आसन की पूर्वोक्त विधि के अनुसार प्रथम स्थिरता से बैठकर जिह्वा के अग्र भाग को उलट कर तालु में लगा दे, फिर हृदय में ठहरने वाले प्राण वायु का ध्यान द्वारा ऊपर की ओर खींच करके ब्रह्माण्ड में स्थापित करे और मूल नाड़ी को ऊपर खींच रक्खे। उसी ब्रह्माण्ड में चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों की दिव्य शक्तियों को भी लगा दे और मन ही मन ओ३म् महामन्त्र का जप भी ब्रह्माण्ड में शीघ्रता और एक रस से करने लगे और अपने आत्मा को सर्वथा इस मन्त्र के अर्थ सहित जप में तत्पर कर दें। इस प्रकार प्रातः सायं दोनों सन्धि बेलाओं में नियमपूर्वक घण्टे-घण्टे भर निरन्तर अभ्यास करते-करते जब प्राण-वायु की उष्णता, त्वचा से और ॐ शब्द श्रवणेन्द्रिय से ब्रह्माण्ड में ज्ञात होने

लगे तब कम से कम तीन मास तक अभ्यास करके ब्रह्माण्ड की प्रथम धारणा पक्की कर ले। फिर उपरोक्त रीति से भ्रूमध्य में दूसरी धारणा और नासिकाग्र में तीसरी धारणा भी परिपक्व कर ले। जब नासिकाग्र में शब्द स्पर्श द्वारा प्राण-वायु अच्छे प्रकार विदित होने लगे तब प्राण-वायु नासिका के बाहर निकलने लगता है, परन्तु बाहर ठहरता कम है और जी घबराने लगता है। उस समय धीरे-धीरे भीतर लेकर त्रिकुटी और ब्रह्माण्ड में क्रम से थोड़ी-थोड़ी देर ठहराता हुआ हृदय-देश में ले जाय फिर बाहर निकाले और भीतर ले जाय। इस रीति से अभ्यास करते-करते प्राण बाहर अधिक ठहरने लगता है। निरन्तर नित्यप्रति नियम-पूर्वक धीरे-धीरे साहस सहित अभ्यास करने से प्राण योगी के वश में हो जाता है। सम्पूर्ण योगाभ्यास के क्रियाओं में यह विधि एक ही रीति से की जाती है, क्योंकि जिन-जिन देश में धारणा की जाती है उन-उन देशों में ही ध्यान और समाधि भी होती है, परन्तु इतना भेद है कि जो-जो देश जिस-जिस प्राण का है, वहाँ-वहाँ उस-उस प्राण से ही काम लिया जा सकता है। इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि, जिह्वा को उलट कर तालु में लगाना जिससे कि प्राण सीधा ऊपर ही को जाय तथा मूल नाड़ी को ऊपर खींच रखना, ये दो क्रिया केवल प्रथम प्राणायाम से ही सम्बन्ध रखती हैं, और-और प्राणायामों में इनका कुछ काम नहीं।

द्वितीय प्राणायाम—ऊपर बाह्य विषय प्राणायाम का वर्णन हो चुका अब आभ्यन्तर विषय नामक दूसरे प्राणायाम का वर्णन किया जाता है। नाभि के नीचे ध्यान लगाकर अपानवायु उदर में भरे। जब नाभि से लेकर कंठ तक भर जाय तब शीघ्रता से ध्यान को कंठ में लाकर अपानवायु बन्द कर दे। जब जी

घबराने लगे तब धीरे-धीरे ध्यान के साथ छोड़ दे। फिर इसी प्रकार अपानवायु को भरकर जितनी देर सहन कर सके उतनी देर बन्द रक्खे। जब जी का घबराहट सहा न जाय तब ध्यान द्वारा धीरे-धीरे छोड़ दे। तत्पश्चात् प्रथम प्राणायाम में कही विधि से ॐ मन्त्र का जप करे और उसकी संख्या द्वारा अपानवायु को उत्तरोत्तर अधिक देर बन्द कर रखने का अभ्यास प्रतिदिन बढ़ता जाय। इसके (१) कुम्भक, (२) पूरक और (३) रेचक ये तीन नाम और भी हैं, जो इसके तीन उपलक्षणों के कारण वख्यात हैं।

इस शरीर में नाभि से लेकर कण्ठ तक जहाँ योगी अपानवायु को भरते हैं, वह एक प्रकार के घड़े के समान है, तथा पेट की उपमा साधारणतः घड़े से देते हैं इसलिये इस प्राणायाम को कुम्भक कहते हैं। दूसरा पूरक इसलिये कहाता है कि, नाभि से कण्ठ तक अपानवायु भरा जाता है, जिस प्रकार घड़े में जल भरा जाता है। अपानवायु पेट में भर कर थोड़ी देर वहाँ रोक रखने पर निकाल दी जाती है इसलिये इसको रेचक कहते हैं। साधक लोग इसको भलीभाँति न जानने के कारण भूल में पड़ जाते हैं और इसके तीन अलग-अलग नाम होने के कारण तीन भिन्न-भिन्न प्राणायाम समझते हैं, परन्तु वास्तव में एक ही है।

तृतीय प्राणायाम—स्तम्भवृत्ति नामक तीसरे प्राणायाम की क्रिया और विधि यह है कि, इस प्राणायाम प्रयोग के समय प्राणवायु को भीतर से बाहर न निकाले और न अपानवायु को बाहर से भीतर ले जाय। जितनी समय तक आसानी से हो सके, उन प्राणों को जहाँ का तहाँ, ज्यों का त्यों एकदम रोक दे।

इसकी क्रिया की विधि यह है कि, प्राणवायु के ठहरने की जगह हृदय में है और अपानवायु के ठहरने की जगह नाभि में है, इन दोनों स्थानों के बीच रहने वाला समानवायु के आधार में ध्यान से पकड़कर थाम ले। जब मन घबराने लगे तब ध्यान ही से उसको छोड़ दे। पुनः बारम्बार इसी भाँति करता जाय। अर्थात्—आसानी से जितनी देर हो सके, उतनी देर बारम्बार अभ्यास करे। योगी की सम्पूर्ण क्रिया सर्वत्र ध्यान से ही की जाती है, इस बात को उपासक को सदा याद रखना चाहिये।

चतुर्थ प्राणायाम—यह प्राणायाम "बाह्याभ्यन्तरविषय-क्षेपी" कहलाता है। इसकी विधि यह है कि, जब प्राणवायु भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विपरीत उसको न निकलने देने के लिये अपानवायु को बाहर से भीतर ले और जब वह बाहर से भीतर जाने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राणवायु से धक्का देकर अपानवायु की गति को भी रोकता जाय। इस प्रकार एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करने से दोनों प्राणों की गति रुककर प्राण अपने वश में हो जाता है और इन्द्रिय भी स्वाधीन हो जाते हैं। बल और पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र हो जाती है और कठिन से कठिन विषय को भी ग्रहण करने की शक्ति हो जाती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य बढ़ता है और स्थिरबल पराक्रम जितेन्द्रियता प्राप्त होती है। सब शास्त्र थोड़े ही समय में समझ सकता है और चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर होता है। स्त्री भी इस प्रयोग को कर सकती है, ऐसा पतञ्जलि मुनि ने अपने योगदर्शन में वर्णन किया है।

यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि श्वास-प्रश्वास की गति के अधिकता से क्षुधा और प्यास की अधिकता होती है। अधिक परिश्रम करने से, अधिक चलने-फिरने से भूख-प्यास अधिक हो जाती है; इसका मूल कारण श्वास-प्रश्वास की अधिकता है इसलिये प्राणायाम का साधन अधिकता से करे जिसमें श्वास-प्रश्वास की गति आप से आप निवृत्त हो जाय। आत्मानन्द का अनुभव साधक को तभी होता है जब क्षुधा पिपासा की निवृत्ति कर ध्यानावस्थित समाधि में मग्न हो। ब्रह्माण्ड में साधन द्वारा प्राण को रखने से मृत्यु-भय भी जाता रहता है।* गोरक्ष-पद्धति में लिखा है कि १२ उत्तम प्राणायामों में प्रत्याहार, १४४ में धारणा, १७७८ में ध्यान और २०७३६ में समाधि होती है। इसके उपरान्त शान्ति उसी अवस्था में होती है जब योगी को सभी वस्तु समान दीखने लगे, यह त्याग अवस्था है। अर्थात् सुख-दुःख मान-अपमान ग्रीष्म-शीत इत्यादि का झगड़ा नहीं रहता। सब प्रकार के भोग के इच्छा के मिट जाने ही से शान्ति होती है।

प्राणायाम साधन में समय की अत्यन्त आवश्यकता है। योगशास्त्र में वर्णित है कि शरद और वसन्त ऋतु में योगारम्भ करना उत्तम है। इसके विरुद्ध और-और ऋतुओं में योगारम्भ करने से उसके कर्ता को सिद्धि प्राप्त नहीं होती; अवश्य वह रोग-ग्रस्त हो सब प्रकार के दुःखों को भोगता है। ऐसी ऊटपटांग

---

* प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।
प्रत्याहारद्विषट्केन ज्ञायते धारणा शुभा ॥१॥
धारणाद्वादश प्रोक्ता ध्यानाद्ध्यान विशारदैः।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥२॥

करने से दूसरे मनुष्य भी जिन्हें योग-साधन में श्रद्धा रहती है वह इसे दूषित समझने लगते हैं। यद्यपि सिद्ध पुरुष के लिये सभी ऋतुएँ समान हैं, किन्तु नवीन साधक के लिये ऊपर वर्णित दो ऋतुओं में साधन क्रिया को आरम्भ करना चाहिए। ऐसा देखने में आया है कि जो नवीन साधक ऋतु का विचार न करके विपरीत ऋतुओं में साधनकर्म को आरम्भ करते हैं। रोगी हो जाने पर वास्तविक कारण को न जान प्राणायाम ही को दोष-युक्त ठहराते हैं इसलिये मुमुक्षुओं को आचार्य से सब बातों को जान लेना चाहिए। इसका आरम्भ १२ मात्राओं से करना चाहिए। जब अधिक अभ्यास हो जाय तो मात्रा को भी बढ़ावे। यकायक मात्रा अधिक करने से लाभ के बदले हानि उठानी पड़ती है। प्राणायाम का नियमानुसार करना ही उचित है। कभी कम कभी अधिक वा कभी कुछ नहीं, ऐसा करने से वाञ्छित फल नहीं मिलता और पहिले का सब किया-धरा निरर्थक हो जाता है। प्रारम्भ ही में सब काम कठिन बोध होते हैं परन्तु पीछे अभ्यास बढ़ने से कुल कठिनाइयाँ सुगम हो जाती हैं और वही उसका पथ-प्रदर्शक हो जाता है।

यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि योगारम्भ काल में आहार-विहार के ओर अधिक ध्यान दिया जाय। योगियों को मिताहारी होना आवश्यक है। 'हठयोगप्रदीपिका' में वर्णित है कि उदर के चार भागों में दो भाग अन्न से, एक भाग जल से और शेष चतुर्थ भाग को प्राणवायु के संचालन के लिये खाली रक्खे। कटु, इमली, अम्ल, मिर्च, लवण, मांस, दही, कांजी, तेल, तिल, मदिरा, मीठा, कुल्थी, हींग, लहसन, गाजर, उरद ये सब पदार्थ योगियों को त्याज्य हैं। योगियों के लिये अधिक बोलना, अधिक सोना और अधिक स्त्री-प्रसंग भी हानिकारक है।

किन्तु गेहूँ, चावल, साठी, दूध, घी, मक्खन, मिश्री, शहद, सोंठ, परवल और बथुआ का साग योगियों के लिये पथ्य है। योगियों को अधिक भोजन और उपवास करना उचित नहीं। इन सब का विचार करके योग-साधन में तत्पर होना चाहिए। जो मनुष्य योग में समर्थ हो जाता है उसे कोई वस्तु हानिकारक नहीं होती। इसका कारण यही है कि शरीर और आत्मा का सम्बन्ध इस भाँति हो जाता है कि सभी वस्तु आत्मा के अनुसार होने से शरीर के अनुसार हो जाते हैं। जिस तरह दुष्ट स्वभाव का मनुष्य अच्छे मनुष्य के संगति पाकर उसका स्वभाव भी अच्छा हो जाता है, उसी प्रकार योगी भी वस्तुओं के गुण को शरीर के अनुकूल बना लेता है।

प्रत्याहार-विचार

अब यहाँ प्रत्याहार का विचार किया जाता है। प्रत्याहार उसे कहते हैं जिसमें चित्त इन्द्रियों के सहित अपने विषय को त्याग कर केवल ध्यानावस्थित हो जाय। प्रत्याहार से इन्द्रियाँ अत्यन्त वश में हो जाती हैं। तब वह मनुष्य जितेन्द्रिय होकर जहाँ अपने मन को ठहराना वा चलाना चाहे उसमें ठहरा और चला सकता है, फिर उसको ज्ञान हो जाने से सदा सत्य में ही प्रीति हो जाती है, असत्य में कभी नहीं तब ही वह मोक्ष का भागी होता है।

साधक को उचित है कि काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर्य्य, ये छः रिपु जो पाप की ओर ले जाने वाले हैं इन्हें सावधानी के साथ यत्नपूर्वक वश में करे। काम जो योग का प्रबल बाधक है, इसके शमन के लिए पूर्ण यत्न करना चाहिए। साधक को उचित है कि अनन्त पीड़ा होने पर भी पर-स्त्री का

संसर्ग न करे। इस प्रकार की बातचीत न करे जिसमें काम की चर्चा हो। काम-कथा की पुस्तकों को न पढ़े, पर-स्त्री की ओर दृष्टिपात न करे और न एकान्त में उसके निकट बैठे। धर्म-पुस्तक को पढ़ा करे और बुरे चाल-चलन वाले के संगति से अलग रहे। कामोद्दीपक वस्तु का सेवन न करे तभी मनुष्य इसके शमन में समर्थ हो सकता है। क्रोध पाप का मूल है। इसके शमन का सूक्ष्म उपाय यह है कि मनुष्य अपने से सबको श्रेष्ठ समझे। यही कारण है कि बड़े-बड़े भक्तजन अपने को दास पद से अलंकृत करते हैं और अपने को सबसे तुच्छ समझते हैं, इस रीति से सहज में क्रोध का शमन होता है। जब मनुष्य बड़ों से शासित होता है तब वह यह समझकर क्रोध नहीं करता है कि बड़े को इसका अधिकार है, यदि क्रोध किया जायगा तो अनुचित होगा। मद के शमन करने का भी यही उपाय है कि हम अपने को सबसे छोटा मान लें। मोह मनुष्य को क्यों प्राप्त होता है? यह साधारण विषय है कि, जब मनुष्य किसी वस्तु को निज का समझने लगे। सब वस्तुओं का मालिक परमेश्वर है, यह अज्ञानता है कि हम किसी वस्तु को अपना समझते हैं इसी कारण मरणान्त समय में शरीर त्यागने में मोह प्राप्त होता है। यदि प्राणी मोह को छोड़ दे तो उसे वियोग किस चीज़ का हो। इसी प्रकार प्राणी के लिये धन परिवारादि की दशा है, सभी थोड़े दिन के साथी हैं फिर इसका वियोग अवश्यम्भावी है। यह सरासर मूर्खता है कि धन तथा पुत्र-कलत्रादि के वियोग से दुःखी होते हैं अथवा पाने से सुखी होते हैं, इसी अवस्था का नाम मोह है। अतएव यह त्यागने के योग्य है। लोभ, नाम लालच का है। जब प्राणी किसी अच्छे वस्तु को देख पाने का यत्न करता है और उसे वह पा नहीं सकता है, तो लोभ करना निरर्थक है। यह बड़ा

ही अनुचित व्यवहार है कि हम लालचवश किसी अच्छी चीज़ को ले लेने का यत्न करें। हम उस यत्न और कर्म को करना चाहिए जिसके प्रतिफल में चाही हुई वस्तु मिल जाय। परमात्मा जो सम्पूर्ण संसार का सृष्टि कर्ता और स्वामी है उसी का भरोसा करना उचित है। पहिले अपने को योग्यपात्र बनाना चाहिये। जब हमारा कर्म ठीक हो जायगा, तब परमात्मा की कृपा से इच्छित फल भी मिल जायगा। मात्सर्य्य अर्थात् ईर्षा, यह हमारे मार्ग का बड़ा कण्टक और मन को दुःख देने वाला है। हमें किसी के वैभवादि को देखकर डाह न करना चाहिये। यह कौन-सी बात है कि किसी के सुख-सम्पत्ति या उसके आनन्द की वस्तु को देख-कर जला करें। ऐसे-ऐसे कुतर्कों और कुकर्मों को कर हृदय को दूषित करना महापाप है। साधक को तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है जब इन छओं रिपुओं को जीत ले। जो मनुष्य ईश्वर में लौ लगाता है वह अवश्य इच्छित फल को पाता है और मोक्ष-पद को प्राप्त कर सकता है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमज्जदीशानन्दसरस्वतीकृत
प्राणायाम प्रयोग विधिः समाप्तः ॥

अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमिषोन्मेष वर्जिता ।
एषा श्रीशाम्भवी मुद्रा जन्ममृत्यु विनाशिनी ॥
अचिन्त्याव्यक्त रूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधार मूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥१॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्य निधनेऽयोव्यक्त जीवेश्वरो ।
यःसृष्ट्वेद मनुप्रविष्य ऋषिणा चक्रेपुरः शासिताः ॥
यं संपद्य जहात्यजा मनुशयी सुप्तःकुलायं तथा ।
तं कैवल्यनिरस्त योनिमभयं ध्यायेदजस्त्रं हरिम् ॥

गुरु महिमा

गुरुं त्वं कृत्य हुंकृत्य गुरुसान्निध्यभाषणः ।
अरण्ये निर्ज्जलेदेशे सभवेद्ब्रह्मराक्षसः ॥
गुरुकर्म न लंघेत नापृष्ट्वा कार्यमाचरेत ।
नह्युत्तिष्ठेद्दिशे नत्वा गुरुसद्भाव शोभितः ॥

गुरु सन्मुख असत्य जो बोलै ।
भरमत तीन लोक में डोलै ॥
गुरुहिं हुँकार हुँकार बुलावै ।
अथवा कर तुकार गुहरावै ॥
निर्जल वन के देश भवानी ।
ब्रह्म राक्षस हो अभिमानी ॥
गुरु को काज न लंघन कीजै ।
गुरु सेवा में चित्त को दीजै ॥
बिन गुरु आज्ञा लिये भवानी ।
काज न करहिं आप बन ज्ञानी ॥

तुलसीमानसं वन्दे विश्वकल्याण हैतुकम् ।
फलं यस्य सुखं शान्तिः प्रत्यक्षं रामदर्शनम् ॥

रामायण *

हमें निज धर्म पर चलना सिखाती रोज रामायण।
सदा शुभ मार्ग पर चलना सिखाती रोज रामायण ॥१॥
जिन्हें संसार सागर से उतर कर पार जाना हो।
उन्हें सुख के किनारे पर लगाती रोज रामायण ॥२॥
कहीं विष्णु की माया है कहीं शंकर की झाँकी है।
कहीं भगवती के झूली पर झुलाती रोज रामायण ॥३॥
कहीं वेदों का सागर है कहीं गंगा की धारा है।
नये वन्दन की धारा में नहाती रोज रामायण ॥४॥
सरल कविता के कुञ्जों में प्रभु का नाम रहता है।
हमें निज वन्धु के दरशन कराती रोज रामायण ॥५॥

ममता तू न गई मेरे मन ते।
पाके केश जन्म के साथी लाज गई लोकन ते ॥१॥
तन थाके कर कम्पन लागे ज्योति गयी नैनन ते।
श्रवण वचन न सुनत काहू के बल गये सब इन्द्रिन ते ॥२॥
टूटे दसन वचन नहिं आवत शोभा गई मुखन ते।
कफ पित वात कण्ठ पर बैठे सुतहिं बुलावत करते ॥३॥
भाई बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर ते।
जैसे शशिमण्डल विच स्याही छूटै कोटि यत्न ते ॥४॥
तुलसीदास बलि जाऊ चरण ते लोभ पराये धन ते।

महात्म

आत्मज्ञान को पायकर पावे मोक्ष का धाम।
मोक्षधाम होवे यही जा मिलता भगवान्॥
फिर जन्म न मरना हो कभी मिल जावे ब्रह्म भगवान्।
जन्म मरण संसार में होवे कष्ट महान्॥
व्याधी सबसे यह बड़ी जन्म मरण की फास।
मानुष तन पाकर तभी कटे व्याधि की भास॥
जन्म सफल उसने किया कटे व्याधि की फास।
ऐसा जन्म बहु धन्य हो आशा तृष्णा का नाश॥

चाह गई चिन्ता गई मनुआँ बे-परवाह।
जिनको कछु न चाहिये वह शहनशाह॥
त्याग त्याग सब त्याग है त्याग होय सब त्याग।
जो दृष्टि में दृश्य है होय है इक दिन त्याग॥

श्री १०८ स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती,
गंगामहल मठ, मुन्शीघाट, काशी।